ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.19, No.4, Oct. – Dec., 2024/45

प्रेमचंदकालीन भारतीय शिक्षा और प्रेमचंद के शिक्षा सम्बन्धी विचार

अनिता कुमारी एवं मेघा सिन्हा

https://doi.org/ 10.61410/had.v19i4.212

प्रेमचंदकालीन भारतीय चिंतकों, लेखकों तथा नेताओं का मानना है कि समाज की महत्वपूर्ण इकाई 'व्यक्ति' और उनसे निर्मित 'समुदाय' है। अतएव यदि इनको शिक्षित बनाया जा सकता है तो ये भारतीय उदीयमान समाज में जनतंत्र एवं स्वतंत्र सोच को जन्म देकर भारत की आकांक्षाओं की पूर्ति करने में समर्थ सिद्ध होंगे। हालांकि इनका ये भी मानना है कि किसी को शिक्षित करने से तात्पर्य पढ़ना–लिखना, सिखाना मात्र नहीं है, बल्कि शिक्षित करने का अर्थ व्यक्ति को सार्वभौमिक पर्यावरणजन्य नाना प्रकार की परिस्थितियों से उसका तादात्म्य बनाकर यथार्थताओं के लक्ष्य तक ले जाना है।

प्रेमचंदकालीन भारतीय परिदृश्य

प्रेमचंद का सम्पूर्ण जीवन ब्रिटिश–काल का रहा है। अतः वे अंग्रेजी सरकार के नस–नस से परिचित थे। उस काल का जो भारतीय परिदृश्य था चाहे वह राजनीतिक, साहित्यिक या फिर सामाजिक रहा हो, अंग्रेजी सरकार सबको कुचल देना चाहती थी। लेकिन तत्कालीन साहित्यकारों, पत्रकारों, राजनेताओं तथा समाज सुधारकों ने अंग्रेजों को मुँहतोड़ जवाब भी देना शुरू कर दिया था।[1]

भारत की जनता की इच्छा और उसकी समस्याओं से प्रेमचंद भी पूरी तरह से वाकिफ थे तथा भारतीय जनता के सच्चे प्रतिनिधि के सारे लक्षण उनमें विद्यमान थे। क्योंकि जनता की आवाज को राष्ट्रव्यापी बनाकर उसे प्रशासन तक ले जाना और समाज–सुधार से जुड़े कार्यों को पूरा करना ही उनके साहित्य का उद्देश्य था। सरकार की आर्थिक नीतियाँ मुनाफे पर आधारित होती थी। समाज की दशा और आवश्यकताओं से उसे कुछ लेना–देना नहीं था, किन्तु प्रेमचंद समाज के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए संकल्पबद्ध थे। अतः एक लेखक के रूप में वे अत्यधिक लोकप्रिय थे।[2]

प्रेमचंदकालीन शिक्षा व्यवस्था

शिक्षा समाज की विकासधारा में योगदान का अभिन्न साधन है। प्राचीन काल से लेकर प्रेमचंदकाल तक शिक्षा की गति का लेखा–जोखा शिक्षाविदों और शिक्षा की नीतियों से परिलक्षित है। शिक्षा की नीतियों का नियोजन देश–काल के संदर्भ में होता है। वे नीतियाँ समाज को गति प्रदान करती हैं। समाज के उत्थान में शिक्षाविदों के अतिरिक्त समाज के दार्शनिकों एवं अनेक समाज–सुधारकों का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है, क्योंकि उनके जीवन–दर्शन और जीवन–मूल्यों का शिक्षा में अद्वितीय स्थान रहा है।

जहाँ तक प्रेमचंदकालीन शिक्षा–व्यवस्था की बात है तो इस काल में भी मुगलकालीन शिक्षा की रीति पूर्णतः समाप्त नहीं हुई थी और मकतबों तथा मदरसों में अरबी–फारसी की शिक्षा दी जाती थी। हालांकि प्रेमचंद का काल ब्रिटिश–काल का था और इस काल में नये–नये विद्यालय खोले गये, उनका आदर्श और उद्देश्य कुछ और था। वह दफ्तरी शासन का एक विभाग मात्र था जिसका उद्देश्य सत्य की खोज और संस्कृति का विकास नहीं, बल्कि दफ्तरों के लिए कर्मचारी का निर्माण था क्योंकि वहाँ की पुस्तकों पर, शिक्षा–विधि पर, अंग्रेजी राज की छाप थी। छात्रों के आत्म–सम्मान को कुचला जाता था। तात्पर्य यह कि उस काल के अंग्रेजी शिक्षा–प्रणाली व्यक्तिवाद का समर्थन करती थी।[3] इसीलिए प्रेमंचद ने इसकी निन्दा करते हुए कहा था कि– ''समाज पर अबतक व्यक्तिवाद की प्रमुखता रही है। हमारी शिक्षा–प्रणाली वर्त्तमान समय में सारे संसार में प्रचलित है।'' अतः इसके चरित्र को

व्याख्याता, हिन्दी, आरा।
छात्रा, एम0ए0 (हिन्दी), जामिया मिलिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी, दिल्ली

स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि संसार में इस समय जिस शिक्षा–प्रणाली अर्थात् अंग्रेजी शिक्षा–प्रणाली का व्यवहार हो रहा है, वह मनुष्य में ईर्ष्या, भय, घृणा, स्वार्थ, अनुदारता और कायरता आदि दुर्गुणों को ही पुष्ट करती है।

इस तरह प्रेमचंदकालीन शिक्षाविदों का मानना है कि जबतक व्यक्तिवादी प्रवृतियाँ शिक्षा में बनी रहेंगी, तबतक चरित्र का विकास नहीं होगा। यह स्थिति तब के गुलाम और आज के स्वतंत्र भारत में ही नहीं, दुनिया के तमाम देशों में बनी रहेगी, क्योंकि यह शिक्षा न तो श्रम की महत्ता सिखाती है और न ही चरित्र निर्माण करती है। यदि इस शिक्षा के विरोध में क्रांति की जाए तो वह भी सफल नहीं होगी।

प्रेमचंद के शिक्षा संबंधी विचार

प्रेमचंद उन लेखकों में से थे जो साहित्य को सामाजिक हितों का प्रहरी मानते थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य समाज एवं राष्ट्र की उन्नति तथा कल्याण–कामना की सदिच्छा से प्रेरित है। इसलिए उनके साहित्य में राष्ट्रीय दृष्टि और दिशा–निर्देशन में अनेक क्षेत्र समाहित हैं। उन्हीं में से एक है शिक्षा। प्रेमचंद ने अपने निबंधों एवं संपादकीय टिप्पणियों में शिक्षा के संबंध में अनेकशः विचार व्यक्त

किये हैं। इनसे उनकी शिक्षा विषयक् दृष्टि का ज्ञान तथा राष्ट्रीय शिक्षा–नीति के निर्धारण के प्रति जागरूकता तथा दायित्व का बोध होता है।

प्रेमचंद की शिक्षा–दृष्टि का अध्ययन करने पर तीन महत्वपूर्ण बातें सामने आती हैं–

1. प्राचीन भारतीय शिक्षा के विषय में उनका दृष्टिकोण।
2. नवयुगीन वर्तमान शिक्षा–पद्धति के विषय में उनका दृष्टिकोण तथा
3. शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य।

प्रेमचंद अपने लेखों में शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में जो विचार व्यक्त करते हैं उसमें उनके ये विचार, लेखों के अतिरिक्त उनकी रचनाओं के पात्रों के विचारों तथा उनके द्वारा किये गये शिक्षापरक कार्यों के माध्यम से भी व्यक्त हुआ है। अतएव यहाँ उनके मुख्य विचारों को बिन्दुवार प्रस्तुत करने का एक सफल प्रयास है–

बालक को प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा स्वयं कर सके। क्योंकि हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम हमेशा अपने बच्चों से अपनी आज्ञाएँ मनवाते रहे, बल्कि उसको इस योग्य बना दें कि वह स्वयं अपने मार्ग का अपने–आप निश्चय कर ले। क्योंकि युवकों में यह प्रवृति जितनी अधिक होगी, उतनी ही उसकी शिक्षा भी सफल मानी जाएगी।[4]

बालक के जीवन का उद्देश्य कार्य–क्षेत्र में आना है, केवल आज्ञा मानना नहीं। वास्तव में जो बालक इस तरह की शिक्षा पाते हैं, उनमें आत्मविश्वास का लोप हो जाता है और वे हमेशा किसी की आज्ञा का इंतजार करते रहते हैं। अतः हम समझते हैं कि आज कोई पिता अपने बेटे को ऐसी आदत डालने वाली शिक्षा नहीं देगा।[5]

यह सोचनीय है कि क्या यह एक पढ़े–लिखे व्यक्ति को शोभा देता है कि वह अपना रहन–सहन ऐसा बना ले कि जनता उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखने के बदले घृणा या भय की दृष्टि से देखें।[5]

पश्चिम, आदमियत का गला घोंटकर स्वार्थ का मशीन बन गया है और वहीं हमें यह सिखा रहा है। देहातियों में, मजदूरों में वेश्यों में यह प्रवृत्ति उतनी तीव्र नहीं है जितना शिक्षित और सभ्य समाज में। अपने लिए, जो कुछ हो अपने लिए, यहीं जीवन तत्व है।[6]

प्रेमचंद के शिक्षा–संबंधी निम्नवत् हैं–

1. चरित्र–निर्माण तथा दूसरों के अनुकरण योग्य चरित्र का विकास
2. आत्मरक्षा और स्वाभिमान
3. स्वतः निर्णय करने की योग्यता और आत्मविश्वास
4. स्वार्थपरता का ह्रास, सेवा, त्याग तथा मनुष्या की वृद्धि
5. सादा रहन–सहन तथा दिखावटीपन का अभाव
6. जीवन–संग्राम में साहस और जोखिम उठाने की क्षमता
7. व्यक्तिवादिता की जगह सामाजिकता की भावना
8. विश्व–बंधुत्व और जन–सहयोग की भावना का विकास
9. व्यक्ति की मौलिक क्षमता को विकास का अवसर प्रदान करना और
10. शिष्टाचार और शील का पालन।

इस तरह से इन उपर्युक्त बिन्दुओं को मिलाने पर यह कहा जा सकता है कि जो शिक्षा व्यक्ति को चरित्रवान, सामाजिक और मानवतावादी बनाये वहीं सर्वोत्तम शिक्षा है और ऐसी ही शिक्षा का दान महादान है।[7]

प्रेमचंद के शिक्षा सम्बन्धी विचारों के आदर्श

प्रेमचंद की जो अपनी शिक्षा धारणा है उसमें सबसे बड़ी जरूरत शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार करने की है। लेकिन इस बिन्दु पर न तो शिक्षा विभाग और न ही सरकार कोई पक्की राय कायम कर सकी है। कुछ लोगों का मानना है कि आरंभिक शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ यह होना चाहिए कि बच्चा अक्षर–ज्ञान कर ले और कुछ जोड़–घटाव जान ले। जबकि कुछ अन्य लोगों का विचार है कि आरंभिक शिक्षा इस ढंग पर हो कि आगे चलने में बच्चों को मदद मिले। किन्तु ये दोनों राय एक–दूसरे के विरोधी हैं। अतः आवश्यक है कि हमारी आरंभिक शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा स्थिर किया जाए कि चार वर्ष तक पढ़ने के बाद बच्चा अपनी जरूरतों के अनुसार आगे की शिक्षा भी पाये।

प्रेमचंद की जो शिक्षा–धारणा है उसमें यह है कि यदि प्राईमरी स्तर की पढ़ाई व्यापक कर दी जाए तो, किसानों की जरूरतों के लिए भी काफी है। उन्होंने भाषा में सुधार करने की भी नसीहत दी है ताकि बच्चे रामायण भी समझ सकें। साथ ही उन्हें हिसाब, भूगोल तथा शारीरिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए और इसी क्रम में पत्र–लेखन का तरीका भी आवश्यक है।

प्रेमचंद की शिक्षा–संबंधी धारणा के आदर्श इस बात से भी स्पष्ट होते हैं कि उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी की शिक्षा–व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए कहा है कि– ''गुरुकुल यदि कुछ न करे तो भी इतने युवकों के सम्मुख सरल जीवन और उच्च विचार का आदर्श रखना ही उसके जीवित रहने के लिए काफी है। जबकि अंग्रेजी कॉलेजों में तो आवश्यकताओं की गुलामी ही सिखाई जाती है, जहाँ अध्यापक लोग ही इस विद्या के सबसे बड़े शिक्षक होते हैं।[8]

प्रेमचंद का मानना है कि जिन्दगी की दौड़ में क्या युवक प्रवेश पा सकते हैं, जिनके पैरों में जरूरतों की भारी बेड़ियाँ पड़ी हो? भले सरकारी विभागों में वे अच्छे पद पा जायें, पर सरकारी नौकरियों से तो राष्ट्र नहीं बनते। जबकि गुरुकुल ने अपने जीवन के थोड़े से ही वर्षों में राष्ट्र के जितने सेवक पैदा किये हैं उतने और किसी विद्यालयों नें नहीं किये होंगे।[9]

प्रेमचंद एक सजग और चिंतनशील लेखक थे और वे किसी की न तो अंध–प्रशंसा करते हैं और न ही निन्दा। बिना समझे अतीत के गौरव गीत गाना उनकी समझ से बाहर है। अतः वे केवल भारतीय शिक्षा–पद्धति की प्रशंसा नहीं करते, उसकी सीमा और उसके दोषों से भी अवगत कराते हैं। वे दोषों का निदान भारतीय संदर्भ में कराना चाहते हैं। क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा–प्रणाली को वे किसी भी कीमत पर न तो प्राचीन भारतीय शिक्षा–प्रणाली का विकल्प मानते हैं और न आधुनिक जीवन के लिए

उपयुक्त। उनका मानना है कि– ''हमारी सभ्यता में रोग थे, लेकिन उसकी दवा यूरोपीय–सभ्यता की अंधभक्ति नहीं है। उसकी दवा हमें संस्कृति में खोजनी थी। यूरोप पथभ्रष्ट है, उसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं है और आज यूरोप के विचारवान् लोग कह रहे हें कि यह संस्कृति अब विध्वंस की गर्त में जानेवाली है।[10]

कुल मिलाकर प्रेमचंद ऐसी नीति की प्रस्तावना करते हैं जो हमें भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत करे, जो हमें चरित्र की दृष्टि से सबल बनाकर जीवन–संघर्ष में जूझने की शक्ति प्रदान करें, जो हमारे मानसिक और शारीरिक विकास में योगदान करे, सर्वस्व समझने वाली मानसिकता को नियंत्रित और संयमित रखे तथा जो मानवीय मूल्यों और सामाजिकता का पोषण करे, ताकि हम मनुष्य बन सकें।

अतएव प्रेमचंद ऐसी शिक्षा–पद्धति के पक्ष में है जो हमारी संस्कृति की रक्षा करे, युगानुकूल हो और जीवन–यापन में सहयोगी हो। इन्हीं कुछ शिक्षा–दृष्टियों का विनियोग उनकी रचनाओं में भी अभिव्यक्त हुआ है जिससे उनकी शिक्षा–धारणा के आदर्श भी स्पष्ट होते हैं।

संदर्भ–ग्रंथ

1. ''*आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन*''– डॉ0 अमरेश्वर अवस्थी एवं डॉ0 रामकुमार अवस्थी, पृ0 92
2. ''*लोकमान्य तिलक : हिज सोसल एण्ड पॉलिटिकल थॉट*''– शांता साठे, पृ0 162
3. ''*विविध प्रसंग, भाग– दो*''– प्रेमचंद, पृ0 212
4. ''*विविध प्रसंग*''– प्रेमचंद, पृ0 192
5. ''*विविध प्रसंग*''– प्रेमचंद, पृ0 192
6. वही, पृ0 118
7. ''*अनवरत एवं अनौपचारिक शिक्षा*''– सुरेन्द्र मोहन, पृ0 221
8. ''*जमाना (उर्दू–पत्र)*'' संपादक– दयानारायण निगम, वर्ष– मई–जून, 1909
9. ''*विविध प्रसंग भाग– दो*''– प्रेमचंद, पृ0 182–183
10. वही, पृ0 240